प्राचीन व्रजमंडलमें जैनधर्मका विकास

श्री प्रभुदयाल मीतल, मथुरा

जैन तीर्थंकरोंका सम्बन्ध—जैन धर्मके २४ तीर्थंकरोंमेंसे कईका घनिष्ठ सम्बन्ध शूरसेन जनपद अर्थात् प्राचीन व्रजमंडलसे रहा है। जिनसेन कृत 'महापुराण'में जैन धर्मकी एक प्राचीन अनुश्रुतिका उल्लेख हुआ है। उसके अनुसार आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभनाथके आदेशसे इन्द्रने इस भूतलपर जिन ५२ देशोंका निर्माण किया था, उनमें एक शूरसेन भी था, जिसकी राजधानी मथुरा थी। सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथका मथुरा से विशेष सम्बन्ध रहा था, जिसके उपलक्षमें कुवेरा देवीने यहाँपर एक स्तूपका निर्माण किया था। उसमें सुपार्श्वनाथजीका बिम्ब प्रतिष्ठित था। वह स्तूप जैन धर्मके इतिहासमें बड़ा प्रसिद्ध रहा है। चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथजीकी स्मृतिमें भी एक स्तूपके बनाये जानेका उल्लेख मिलता है। बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथजी जैन मान्यताके अनुसार वासुदेव कृष्णके भाई थे, जो शूरसेन जनपदके प्राचीन शौरिपुर राज्य (वर्तमान बटेश्वर, जिला आगरा) के यादव राजा समुद्रविजयके पुत्र थे। उनके कारण शूरसेन प्रदेश और कृष्णका जन्मस्थान मथुरा नगर जैनधर्मके तीर्थस्थान माने जाने लगे थे। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथजी और अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर एवं जैनधर्मके प्रतिष्ठाता महावीरजीका मथुरामें विहार हुआ था। जिस कालमें भगवान् महावीरजी मथुरा पधारे थे, उस समय यहाँके राजा उदितोदय अथवा भीदाम, राजकुमार कंवल और शंवल, नगर सेठ जिनदत्तके पुत्र अर्हद्दास तथा अन्य राजकीय पुरुष एवं प्रतिष्ठित नागरिक जैनधर्ममें दीक्षित हुए थे। उनके कारण साधारण जनतामें भी जैनधर्मका प्रचार होने लगा था।

जम्बूस्वामीका साधना-स्थल—भगवान् महावीरके प्रशिष्य सुधर्म स्वामीसे प्रव्रज्या लेकर जम्बू स्वामीने मथुराके चौरासी नामक स्थलपर तपस्या की थी। २० वर्ष तक मुनिवृत्ति धारण कर तपस्या करनेसे वे कैवल्यज्ञानी हुए थे। ४४ वर्ष तक कैवल्यज्ञानी रहनेके उपरान्त उन्हें सिद्ध पद प्राप्त हुआ था। इस प्रकार ८० वर्षकी आयुमें उन्होंने मोक्ष लाभ किया। जम्बू स्वामी जैनधर्मके अन्तिम केवली माने गये हैं। उनकी तपस्या और मोक्ष-प्राप्तिका केन्द्र होनेसे मथुराका चौरासी नामक स्थल जैनधर्मका 'सिद्ध क्षेत्र' माना जाता है।

जम्बू स्वामीके प्रभावसे सद्गृहस्थोंके अतिरिक्त दस्युओंके जीवनमें भी धार्मिकताका उदय हुआ था। उस समयके कई भयंकर चोर अपने बहुसंख्यक साथियोंके साथ दुष्प्रवृत्तियोंको छोड़कर तप और ध्यानमें लीन हुए थे। मथुराके तपोवनमें उक्त दस्युओंको भी साधु-वृत्ति द्वारा परमगति प्राप्त हुई थी। कालान्तरमें जब चौरासीमें जम्बू स्वामीके चरण-चिह्न सहित मन्दिर बना, तब उनके समीप उन तपस्वी दस्युओंकी स्मृतिमें भी अनेक स्तूप बनवाये गये थे।

देव निर्मित स्तूप—सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथजी की स्मृतिमें कुवेरा देवीने मथुरामें जिस स्तूपका निर्माण किया था, वह अत्यन्त प्राचीन कालसे ही जैनधर्मके इतिहासमें प्रसिद्ध रहा है। 'मथुरापुरी कल्प' से ज्ञात होता है कि तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथजीके समयमें उसे ईंटोंसे पुनर्निमित किया गया था। वह जैन-धर्मका सबसे प्राचीन स्तूप था, जो कमसे कम तीन सहस्र पूर्व बनाया गया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक कालके अनेक विदेशी पुरातत्त्व वेत्ताओंने मथुराके कंकाली टीलाकी खुदाई की थी। उसमें जैनधर्मसे सम्बन्धित बड़ी महत्त्वपूर्ण वास्तु-सामग्री प्राप्त हुई। उस सामग्रीमें कुषाण कालीन एक मूर्तिकी अभिलिखित पीठिका है, जो इस समय लखनऊ संग्रहालय (संख्या जे० २०) में है। उस पीठिकाके अभिलेखसे ज्ञात होता है कि कुषाण सं० ७९ (सन् १५७ ई०) में कोट्टिय गणकी वैर शाखाके आचार्य वृद्धहस्तिके आदेशसे श्राविका दिनाने उक्त अर्हत् प्रतिमाको देव निर्मित 'वोद्व स्तूप'में प्रतिष्ठापित किया था।

इस अभिलेखसे सिद्ध होता है कि कुवेरा देवीके स्तूपका नाम 'वोद्व स्तूप' था और यह मथुराके उस स्थलपर बनाया गया था, जिसे अब कंकाली टीला कहते हैं। दूसरी शताब्दीमें ही वह स्तूप इतना प्राचीन हो गया था कि उसके निर्माण-काल और निर्माताके सम्बन्धमें किसीको कुछ ज्ञान नहीं था। फलतः उस कालमें उसे देव निर्मित स्तूप कहा जाने लगा था।

उक्त स्तूपके सम्बन्धमें मान्यता है कि पहले एक मूल स्तूप था, बादमें पाँच बन गये। कालान्तरमें अनेक छोटे-बड़े स्तूप बनाये गये, जिनकी संख्या ५०० से भी अधिक हो गयी थी। उन स्तूपोंके साथ-साथ जैनधर्मके अनेक देवालय और चैत्य भी वहाँ पर समय-समय पर निर्मित होते रहे थे। उन स्तूपों और देवालयोंमें विविध तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की गई थीं। उन सबके कारण वह स्थल मथुरा मंडलमें ही नहीं, वरन् समस्त भारतवर्षमें जैनधर्मका सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र हो गया था। इसका प्रमाण वहाँके उत्खननमें प्राप्त सैकड़ों मूर्तियाँ और वास्तु-कलावशेष हैं। जैनधर्मसे सम्बन्धित इतनी अधिक और इतने महत्त्वकी पुरातात्त्विक सामग्री किसी अन्य स्थानसे प्राप्त नहीं हुई है। जैन मूर्तियोंके साथ ही साथ कुछ मूर्तियाँ बौद्ध और हिन्दू धर्मोंसे सम्बन्धित भी मिली हैं, जो उस कालके जैनियोंकी धार्मिक उदारता और सहिष्णुताकी सूचक हैं। ऐसा जान पड़ता है, उस स्थलके भारतव्यापी महत्त्वके कारण अन्य धर्मवालोंने भी अपने देवालय वहाँ बनाये थे।

जैनधर्ममें तीर्थ-स्थलोंके दो भेद माने गये हैं, जिन्हें १–सिद्ध क्षेत्र और २–अतिशय क्षेत्र कहा गया है। किसी तीर्थंकर अथवा महात्माके सिद्ध पद या निर्वाण-प्राप्तिके स्थलको 'सिद्ध क्षेत्र' कहते हैं, और किसी देवताकी अतिशयता अथवा मन्दिरोंकी बहुलताका स्थान 'अतिशय क्षेत्र' कहलाता है। इस प्रकारके भेद दिगम्बर सम्प्रदायके तीर्थोंमें ही माने जाते हैं, श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ये भेद नहीं होते हैं। दिगम्बर सम्प्रदायके उक्त तीर्थ-भेदके अनुसार मथुरा सिद्ध क्षेत्र भी है और अतिशय क्षेत्र भी। 'सिद्ध क्षेत्र' इसलिये कि यहाँके 'चौरासी' नामक स्थल पर जम्बू स्वामीने सिद्ध पद एवं निर्वाण प्राप्त किया था। यह 'अतिशय क्षेत्र इसलिये है कि यहाँ के कंकाली टीलेके जैन केन्द्रमें देव निर्मित स्तूप के साथ-साथ स्तूपों, देवालयों और चैत्योंकी अनुपम अतिशयता थी।

कंकाली टीलाके उत्खननमें सर्वश्री कनिंघम, हार्डिंग, ग्राउस, बर्गेस और फ्यूरर जैसे विख्यात विदेशी पुरातत्त्वज्ञोंने योग दिया था। वहाँसे जो महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई थी, उसमेंसे अधिकांश लखनऊ संग्राहलयमें है। उसका अल्प भाग मथुरा संग्रहालयमें है, और शेष भाग भारत तथा विदेशोंमें बिखरा हुआ है। इसका परिचयात्मक विवरण डॉ० विसेण्ट स्मिथकी पुस्तक, लखनऊ संग्रहालयके विवरण और डॉ० वोगल कृत मथुरा संग्रहालयके सूचीपत्रसे जाना जा सकता है।

कंकाली टीला प्रायः 1500 वर्ग फीटका एक ऊबड़-खाबड़ स्थल है। इसके एक किनारे पर कंकाली नामकी देवीका एक छोटासा मंदिर बना हुआ है, जिसके नामसे इस समय यह स्थल प्रसिद्ध है। इसकी खुदाईमें 47 फीट व्यासका ईंटोंका एक स्तूप और दो जैन देवालयोंके अवशेष मिले हैं। इसमेंसे जो सैकड़ों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्तियाँ, वास्तु खंड और कलावशेष मिले हैं, उन सबका परिचय देना संभव नहीं है। इस संबंधमें पूर्वोक्त विवरण पुस्तिकाओंसे जाना जा सकता है।

मूर्तियोंमें जो सर्वाधिक महत्त्वकी हैं, उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है। कंधों तक जटा फैलाए हुए आदि तीर्थंकर ऋषभनाथजीकी मूर्ति, बलभद्र-वासुदेवके साथ अंकित २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथजीकी मूर्ति, और सर्प-फणोंसे आच्छादित २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथजीकी मूर्ति तो अपने विशिष्ट चिह्नोंसे पहिचान ली गई हैं। इनके अतिरिक्त अन्य तीर्थंकरोंकी जो बहुसंख्यक मूर्तियाँ हैं, वे विशिष्ट चिह्नोंके अभावमें नहीं पहिचानी जा सकती हैं। जिन मूर्तियोंपर उनके नाम अंकित हैं, उन्हें पहिचान लिया गया है। ये तीर्थंकर मूर्तियां कैवल्य-प्राप्तिके लिये दंडवत् खड़ी हुई और ध्यानावस्थित अवस्था में बैठी हुई—इन दोनों मुद्राओंमें मिली हैं। जैन देवियोंकी मूर्तियोंमें सर्वाधिक महत्त्वकी सरस्वती प्रतिमा है, जो लखनऊ संग्रहालय (सं० जे० २४) में है। यह अभिलिखित है, और अबतक मिली हुई सरस्वतीकी मूर्तियोंमें सबसे प्राचीन है। दूसरी आदि तीर्थंकर ऋषभनाथकी यक्षिणी चक्रेश्वरी देवीकी प्रतिमा है, जो दसवीं शतीकी है, और इस समय मथुरा संग्रहालयमें प्रदर्शित है। इनके अतिरिक्त सर्वतोभद्र अर्थात् चतुर्मुखी मूर्तियां भी हैं। इनमेंसे अनेक मूर्तियोंपर उनके निर्माण-काल और निर्माताओंके नाम अंकित हैं। इनसे जैन मूर्ति कलाके विकासको भली भांति समझा जा सकता है।

मूर्तियोंसे भी अधिक महत्त्वके वे आयाग पट हैं, जो जैन मूर्तियोंके निर्माणके पूर्वकी स्थितिके परिचायक है। जब जैनधर्ममें मूर्तियोंका प्रचलन नहीं हुआ था, तब शिलाखंडोंपर जैनधर्मके मांगलिक चिह्नोंका अंकनकर उन्हें तीर्थंकरोंके प्रतीक रूपमें पूजाके लिये प्रतिष्ठित किया जाता था। उक्त शिलाखंडोंको 'आयाग पट' कहते हैं। इस प्रकारके कई पट कंकालीकी खुदाईमें मिले हैं, जो लखनऊ और मथुराके संग्रहालयोंमें प्रदर्शित हैं। उक्त पूजनीय पटोंके अतिरिक्त अनेक कलात्मक पट भी कंकालीसे मिले हैं। उनमें सबसे प्राचीन पट शुंगकाल (दूसरी शती पूर्व) के हैं। ऐसे एक शिलापटमें भगवान् ऋषभनाथजीके समक्ष नीलांजना अप्सराके नृत्यका दृश्य अंकित है। यह प्राचीन भारतीय नृत्यकी मुद्राका अंकन है, जो मथुरा मंडलके विगत कलात्मक वैभवको प्रकट करता है। शुंग कालीन एक अन्य शिलापट किसी धार्मिक स्थलका तोरण है। इसके एक ओर यात्राका दृश्य है, और दूसरी ओर सुपर्णों तथा किन्नरों द्वारा स्तूप के पूजनका दृश्य है। अनेक पटोंपर सुंदरियोंकी विभिन्न चेष्टाओं और मुद्राओंके दृश्य अंकित हैं। इनसे प्राचीन जैनधर्मकी कलात्मक अभिरुचिका भली-भांति परिचय मिलता है।

मथुरामंडलके वे दोनों जैन केन्द्र—१. जम्बू स्वामीका निर्वाण-स्थल और २. देवनिर्मित स्तूप तथा उसके समीप बने हुए बहुसंख्यक देवालयोंसे समृद्ध कंकाली टीला—अपने निर्माणकालसे अनेक शताब्दियों पश्चात् तक समस्त जैनियोंके लिये समान रूप से श्रद्धास्पद थे। मगध जनपद और दाक्षिणात्य क्षेत्रोंके जैनसंघ कालांतरमें दिगंबर और श्वेतांबर नामक दो संप्रदायोंमें विभाजित हो गये थे, किन्तु प्राचीन व्रजमंडलका जैनसंघ उस भेद-भावसे अछूता रहा, और यहाँके देव-स्थान सभी संप्रदाय वालोंके लिये पूजनीय बने रहे थे।

प्राचीन व्रजमंडलमें जैनधर्मकी इन महत्त्वपूर्ण उपलब्धियोंके साथ ही साथ इस भू-भागमें समय-समय पर ऐसी अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ भी हुई हैं, जिन्होंने जैनधर्मके इतिहासमें गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। यहाँ पर ऐसी कतिपय घटनाओंका उल्लेख किया जाता है।

'सरस्वती'-आन्दोलन और 'जिन वाणी' का लेखन—जैनधर्म के मूल सिद्धांत भगवान् महावीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा कथित अर्धमागधी प्राकृत भाषामें हैं, जिन्हें 'जिन-वाणी' अथवा 'आगम' कहा जाता है। वैदिक संहिताओंकी भाँति जैन आगम भी पहले श्रुत रूप में थे। सम्राट् अशोकने बौद्धधर्मके प्रचारार्थ अपने साम्राज्य के विविध स्थानोंमें जो धर्म-लेख लिखवाये थे, उनसे जैनधर्मके विद्वानोंको भी आगमोंको लिखित रूपमें सुरक्षित करनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी; किंतु जैनाचार्योंके प्रबल विरोधके कारण उन्हें लिपिबद्ध नहीं किया जा सका था। जब कई शताब्दियों तक अन्य स्थानोंके जैनाचार्य आगमोंको लिपिबद्ध नहीं कर सके, तब मथुरामंडलके जैन विद्वानोंने उक्त प्रश्नको उठाया, और 'सरस्वती आंदोलन' द्वारा इस विषयका नेतृत्व किया था।

विद्या बुद्धि और ज्ञान-विज्ञानकी अधिष्ठात्री देवीका नाम सरस्वती है। इसे ब्राह्मी, भारती, भाषा और गीर्वाणवाणी भी कहते हैं। यद्यपि सरस्वतीकी मूल कल्पना प्राचीन है, तथापि इसके स्वरूपका विकास और पूजनका प्रचार जैनधर्मकी देन है। मथुराके जैन विद्वानोंको यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने परंपरागत श्रुत एवं कंठस्थ 'जिन वाणी' को लिखित रूप प्रदान करनेके लिये 'सरस्वती आंदोलन' चलाया था, और मथुराके मूर्ति-कलाकारोंने सर्वप्रथम पुस्तकधारिणी सरस्वती देवीकी प्रतिमाएँ निर्मितकर उस आंदोलनको मूर्त रूप प्रदान किया था। उक्त आंदोलन का यह परिणाम हुआ कि जिन-वाणीको लिपिबद्ध करनेका विरोध क्रमशः कम होता गया। पहिले दिगंबर विद्वानोंने आगम ज्ञानको संकलित कर लिपिबद्ध किया, बादमें श्वेतांबर विद्वान् भी उसके लिये सहमत हो गये। यद्यपि इस कार्यमें कई शताब्दियों तक ऊहापोह होता रहा था।

'माथुरी-वाचना'—दिगंबर विद्वानों द्वारा आगमोंके संकलन और लेखनसे उत्पन्न स्थितिपर विचार करनेके लिये सं 370 वि० के लगभग मथुरामें श्वेतांबर यतियोंका एक सम्मेलन हुआ, जिसकी अध्यक्षता आर्य स्कंदिलने की थी। उस सम्मेलनमें आगमोंका पाठ निश्चित कर उनकी व्याख्या की गई, जिसे 'माथुरी वाचना' कहा जाता है। उसी समय आगमोंको लिपिबद्ध करनेपर भी विचार किया गया, किंतु भारी मतभेद होनेके कारण तत्संबंधी निर्णय स्थगित करना पड़ा। बादमें विक्रमकी छठी शताब्दीके आरंभमें सुराष्ट्रके वल्लभी नगरमें देवर्धिगणी क्षमा-श्रमणकी अध्यक्षतामें श्वेतांबर मान्यताके आगमोंको सर्वप्रथम संकलित एवं लिपिबद्ध किया गया था। श्वेतांबर साधु जिनप्रभ सूरि कृत 'मथुरापुरी कल्प'में लिखा है, जब शूरसेन प्रदेशमें द्वादशवर्षीय भाषण दुर्भिक्ष पड़ा था, तब आर्य स्कंदिलने संघको एकत्र कर आगमोंका अनुयोग किया था। मथुराके प्राचीन देवनिर्मित स्तूपमें एक पक्षके उपवास द्वारा देवताकी आराधनाकर जिनप्रभ श्रमणने दीमकोंसे खाये हुए त्रुटित 'महानिशीथ सूत्र' की पूर्ति की थी।

साहित्य-प्रणयन—जैनधर्मका प्राचीन साहित्य अर्धमागधी प्राकृतमें है, जिसे 'जैन प्राकृत' कहा जाता है। बादका साहित्य संस्कृत, अपभ्रंश और प्रांतीय भाषाओंमें रचा हुआ उपलब्ध है। प्राचीन साहित्यमें प्रमुख स्थान आगमोंका है। उनके पश्चात् पुराणोंका महत्त्व माना जाता है। पुराणोंमें जैन तीर्थंकरोंकी महिमाका वर्णन किया गया है। उनके साथ राम और कृष्णका भी उल्लेख हुआ है; किंतु उनके चरित्र जैन विद्वानों ने वैष्णव विद्वानोंकी अपेक्षा कुछ भिन्न दृष्टिकोणसे लिखे हैं। वासुदेव कृष्णको तीर्थंकर नेमिनाथजीका भाई माना गया है, अतः कृष्णके पिता वसुदेव, भाई बलभद्र और पुत्र प्रद्युम्नके चरित्र लिखनेमें जैन विद्वानोंने बड़ी रुचि प्रकट की है। ऐसे ग्रंथोंमें जिनसेनाचार्य कृत 'हरिवंश पुराण' विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। यह 66 सर्गोंका विशाल ग्रंथ है। इसकी रचना सं० 840 में हुई थी। इसके आरंभिक सर्गोंमें अन्य तीर्थंकरोंका संक्षिप्त कथनकर 18 वें सर्ग से 61 सर्ग तक तीर्थंकर नेमिनाथजीका और उनके साथ वसुदेव, वासुदेव, कृष्ण, बलभद्र तथा प्रद्युम्नका अत्यंत विशद वर्णन किया गया है। सबके अंतमें भगवान् महावीरका चरित्र वर्णित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस कालके ग्रंथोंमेंसे जो ग्रंथ ब्रजमंडलमें रचे गये थे, उनका प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं है। ऐसा अनुमान है संस्कृत, शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंशमें कुछ ग्रंथ अवश्य रचे गये होंगे, जो कालके प्रवाहमें नष्ट हो गये। कालांतरमें जो ग्रंथ ब्रजभाषामें रचे गये थे, वे अब भी विद्यमान हैं, और उनसे ब्रजमंडल के जैन विद्वानोंकी साहित्य-साधनापर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

हूणों का आक्रमण—मौर्य-शुंग कालके पहिलेसे लेकर गुप्त शासनके बाद तक, अर्थात् एक सहस्रसे अधिक काल तक प्राचीन ब्रजमंडलमें जैनधर्मसे संबंधित इमारतें प्रायः अक्षुण्ण रही थीं। उस कालमें जैन धर्मकी उत्तरोत्तर उन्नति करता रहा था। गुप्त शासनके अंतिम कालमें जब असभ्य हूणोंने प्राचीन ब्रजमंडल पर आक्रमण किया, तब उन्होंने यहाँकी अन्य इमारतोंके साथ ही साथ जैन इमारतोंको भी बड़ी हानि पहुँचाई थी। यहाँका सुप्रसिद्ध देव निर्मित स्तूप उस कालमें क्षतिग्रस्त हो गया था, और अन्य स्तूप एवं मंदिर-देवालय भी नष्टप्राय हो गये थे।

देवस्थानोंका जीर्णोद्धार और धार्मिक स्थितिमें सुधार—हूणोंके आक्रमणसे प्राचीन ब्रजमंडलकी जो इमारतें क्षतिग्रस्त हो गई थीं, उनके जीर्णोद्धारका श्रेय जिन श्रद्धालु महानुभावोंको है, उनमें वप्पभट्टि सूरिका नाम उल्लेखनीय है। 'विविध तीर्थकल्प' से ज्ञात होता है कि वप्पभट्टि सूरिने अपने शिष्य ग्वालियर नरेश आमराजसे सं० 826 वि० में मथुरा तीर्थका जीर्णोद्धार कराया था। उसी समय ईंटोंसे बना प्राचीन 'देवनिर्मित स्तूप', जो उस समय जीर्णावस्थामें था, पत्थरोंसे पुनर्निर्मित किया गया और उसमें भ० पार्श्वनाथ-जीके जिनालय एवं भ० महावीरजीके बिम्ब की स्थापना की गई थी। वप्पभट्टि सूरिने मथुरामें एक मंदिरका निर्माण भी कराया था, जो यहाँपर श्वेतांबर संप्रदायका सर्वप्रथम देवालय था।

बौद्धधर्मके प्रभावहीन और फिर समाप्त हो जानेपर मथुरामंडलमें जो धर्म अच्छी स्थितिमें हो गये थे, उनमें जैनधर्म भी था। 10 वीं, 11 वीं और 12 वीं शताब्दियोंमें यहाँपर जैनधर्मकी पर्याप्त उन्नति होनेके प्रमाण मिलते हैं। उस कालमें मथुरा स्थित कंकाली टीलाके जैन केन्द्रमें अनेक मंदिर-देवालयोंका निर्माण हुआ था और उनमें तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गई थीं। उस कालकी अनेक लेखांकित जैन मूर्तियाँ कंकाली टीलेकी खुदाईमें प्राप्त हुई हैं। मथुराके अतिरिक्त प्राचीन शौरिपुर (बटेश्वर, जिला आगरा) भी उस कालमें जैनधर्मका एक अच्छा केन्द्र हो गया था और वहाँ प्रचुर संख्यामें जैन मंदिरोंका निर्माण हुआ था।

महमूद गज़नवीके आक्रमणका दुष्परिणाम—सं० 1074 में जब महमूद गज़नवीने मथुरापर भीषण आक्रमण किया था, तब यहाँके धार्मिक स्थानोंकी बड़ी हानि हुई थी। कंकाली टीलाका सुप्रसिद्ध 'देवनिर्मित स्तूप' भी उसी कालमें आक्रमणकारियोंने नष्ट कर दिया था, क्योंकि उसका उल्लेख फिर नहीं मिलता है। ऐसा मालूम होता है, उक्त प्राचीन स्तूपके अतिरिक्त कंकाली टीलाके अन्य जैन देवस्थानोंकी बहुत अधिक क्षति नहीं हुई थी, क्योंकि उससे कुछ समय पूर्व ही वहाँ प्रतिष्ठित की गई जैन प्रतिमाएँ अक्षुण्ण रूपमें उपलब्ध हुई हैं। संभव है, जैन श्रावकों द्वारा उस समय वे किसी सुरक्षित स्थानपर पहुँचा दी गई हों, और बादमें स्थिति ठीक होनेपर उन्हें प्रतिष्ठित किया गया हो।

महमूद गज़नवीके आक्रमण कालसे दिल्लीके सुल्तानोंका शासन आरंभ होने तक अर्थात् 11 वीं से 13 वीं शतियों तक मथुरामंडलपर राजपूत राजाओंका शासनाधिकार था। उस कालमें यहाँ जैनधर्मकी स्थिति कुछ ठीक रही थी। उसके पश्चात् वैष्णव संप्रदायोंका अधिक प्रचार होनेसे जैनधर्म शिथिल होने लगा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन तीर्थोंकी यात्रा—वैष्णव संप्रदायोंका अधिक प्रचार होनेसे इस कालमें जैनधर्मका प्रभाव तो घट गया था, किंतु जैन देवस्थानोंके प्रति जनताकी श्रद्धा बनी रही थी। वैष्णव संप्रदायोंका केन्द्र बननेसे पहिले मथुरा नगर जैनधर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था। श्वेतांबर और दिगंबर दोनों संप्रदायोंके जैन साधु और श्रावकगण मथुरा तीर्थकी यात्रा करने आते थे। ऐसे अनेक तीर्थ-यात्रियोंका उल्लेख जैनधर्मके विविध ग्रंथोंमें हुआ है। सुप्रसिद्ध शोधक विद्वान् श्री अगरचंदजी नाहटाने उक्त उल्लेखोंका संकलनकर इस विषयपर अच्छा प्रकाश डाला है।[1] उनके लेखसे ज्ञात होता है कि प्रथम शतीसे सतरहवीं शती तक जैन यात्रियोंके आनेका क्रम चलता रहा था। मथुरा तीर्थकी यात्रा करनेवाले जैन यात्रियोंमें सर्वप्रथम मणिधारी जिनचंद्र सूरिका नाम उल्लेखनीय है। 'युग प्रधान गुर्वावली' के अनुसार उक्त सूरिजीने सं० 1214–17 के कालमें मथुरा तीर्थकी यात्रा की थी। उक्त गुर्वावलमें खरतर गच्छके 14 शताब्दी आचार्य जिनचंद्र सूरिके नेतृत्वमें ठाकुर अचल द्वारा संगठित एक बड़े संघ द्वारा भी यात्रा किये जाने का उल्लेख हुआ है। वह यात्री-संघ सं० 1374 में मथुरा आया था। उसने मथुराके सुपार्श्व और महावीर तीर्थोंकी यात्रा की थी। मुहम्मद तुगलकके शासन काल (सं० 1382–सं० 1408) में कर्णाटकके एक दिगंबर मुनिकी मथुरा यात्राका उल्लेख मिलता है। उसी कालमें समराशाहने शाही फरमान प्राप्तकर एक बड़े यात्री-संघका संचालन किया था। उसी संघके साथ यात्रा करते हुए गुजरातके श्वेतांबर मुनि जिनप्रभ सूरि सं० 1385 के लगभग मथुरा पधारे थे। उन्होंने यहाँके जैन देवालयोंके दर्शन और जैन स्थलोंकी यात्रा करनेके साथ ही साथ व्रजके विविध तीर्थोंकी भी यात्रा की थी। उक्त यात्राके अनंतर जिनप्रभ सूरिने सं० 1388 में 'विविध तीर्थ कल्प' नामक एक बड़े ग्रंथकी रचना प्राकृत भाषामें की थी, उसमें उन्होंने जैन तीर्थोंका विशद वर्णन किया है। इस ग्रंथका एक भाग 'मथुरापुरी कल्प' में है, जिसमें मथुरा तीर्थसे संबंधित जैन अनुश्रुतियोंका उल्लेख हुआ है। इसके साथ ही उसमें मथुरामंडलसे संबंधित कुछ अन्य ज्ञातव्य बातें भी लिखी गई हैं। उनसे यहाँकी तत्कालीन धार्मिक स्थितिपर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

कृष्ण-भक्तिके प्रचार और सुलतानोंकी नीतिका प्रभाव—जब व्रजमंडलके कृष्ण-भक्ति का व्यापक प्रचार हुआ, तब यहाँके बहुसंख्यक जैनी जैनधर्मको छोड़कर कृष्ण-भक्तिके विविध संप्रदायोंके अनुयायी हो गये थे। नाभा जी कृत 'भक्तमाल' और वल्लभ संप्रदायी 'वार्ता' में ऐसे अनेक जैनियोंके नाम मिलते हैं। जैनधर्मकी उस परिवर्तित परिस्थितिमें व्रजमंडलके जैन स्तूप-मंदिर, देवालय आदि उपेक्षित अवस्थामें जीर्ण-शीर्ण होने लगे थे। फिर दिल्लीके तत्कालीन मुसलमान सुलतान अपने मज़हबी तास्सुबके कारण बार-बार आक्रमण कर उन्हें क्षति पहुँचाया करते थे। सेठ समराशाह जैसे धनी व्यक्ति समय-समय पर उनकी मरम्मत कराते थे, किन्तु वे बार-बार क्षतिग्रस्त कर दिये जाते थे। इस प्रकार मुगल सम्राट् अकबरके शासन-कालसे पहिले मथुरा तीर्थका महत्त्व जैन धर्मकी दृष्टिसे कम हो गया था, और वहाँके जैन देव-स्थानोंकी स्थिति शोचनीय हो गयी थी।

कृष्ण-भक्तिके वातावरणमें रचित जैन ग्रंथ—श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नके संबंधमें जैन मान्यताका सर्वप्रथम व्रजभाषा ग्रंथ सुधार अग्रवाल कृत 'प्रद्युम्न चरित' है। यह एक सुन्दर प्रबंध काव्य है 'व्रजभाषाके अद्यावधि प्राप्त ग्रंथोंमें सबसे प्राचीन' होनेके साथ ही साथ यह हिन्दी जैन ग्रंथके रूपमें भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका रचना-काल १४वीं शताब्दी है। इस ग्रंथके पश्चात् जो हिन्दी जैन रचनाएँ प्रकाशमें आई, उनमेंसे

---

१. 'व्रज भारती', वर्ष ११, अंक २ में प्रकाशित—'मथुराके जैन स्तूपादिकी यात्रा।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिकतर मुगल सम्राट् अकबरके शासनकालकी, अथवा उसके बादकी हैं। उनमें भी अधिकांश अकबरकी राजधानी आगरा अथवा उसके निकटवर्ती स्थानोंमें रची गई थीं।

अकबर कालीन स्थिति—मुगल सम्राट् अकबरका शासनकाल व्रजमंडलके लिये बड़ा हितकर और यहाँके धर्म-सम्प्रदायोंके लिये बड़ा सहायक सिद्ध हुआ था। उससे जैन धर्मावलम्बी भी प्रचुरतासे लाभान्वित हुए थे। उस कालके पहिले व्रजमंडलमें मथुरा और बटेश्वर (प्राचीन शौरिपुर) और उनके समीपस्थ ग्वालियर जैन धर्मके केन्द्र थे। अकबरके शासनकालमें उसकी राजधानी आगरा नगर जैनधर्मका नया और अत्यन्त शक्तिशाली केन्द्र बन गया था। मथुरा, बटेश्वर और ग्वालियरका तो धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व था; किन्तु आगरा राजनैतिक कारणोंसे जैन केन्द्र बना था।

सम्राट् अकबर सभी धर्म-सम्प्रदायोंके प्रति उदार थे। वे सबकी बातोंको ध्यानपूर्वक सुनते थे, और उनमेंसे उन्हें जो उपयोगी ज्ञात होतीं, उन्हें ग्रहण करते थे। वे जैनधर्मके मुनियोंको भी आमंत्रित कर उनका प्रवचन सुना करते। उन्होंने अन्य विद्वानोंके अतिरिक्त गुजरातके विख्यात श्वेतांबराचार्य हीरविजय सूरिको बड़े आदरपूर्वक फतेहपुर सीकरी बुलाया था, और वे प्रायः उनके धर्मोपदेश सुना करते थे। इस कारण मथुरा-आगरा आदि समस्त व्रजमंडलमें बसे हुए जैनियोंमें आत्म-गौरवका भाव जाग्रत हुआ था। वे मंदिर-देवालयोंके नव-निर्माण अथवा जीर्णोद्धारके लिये भी तब प्रयत्नशील होने लगे थे। आचार्य हीरविजय सूरि जी स्वयं मथुरा पधारे थे। उनकी यात्राका वर्णन 'हीर सौभाग्य काव्य' के १४वें सर्गमें हुआ था। उसमें लिखा है, सूरि जीने मथुरामें विहारकर वहां पार्श्वनाथ और जम्बूस्वामीके स्थलों तथा 527 स्तूपोंकी यात्रा की थी।

अकबरके शासनकालसे आगरा नगर जैनधर्मका प्रमुख साहित्यिक केन्द्र हो गया था। वहाँके अनेक विद्वानों, कवियों और लेखकोंने बहुसंख्यक ग्रंथोंकी रचना कर जैनधर्मकी साहित्यिक समृद्धि करनेके साथ ही साथ व्रजभाषा साहित्यको भी गौरवान्वित किया था।

साहू टोडर और मंत्रीश्वर कर्मचंद—अकबरके शासनकालमें वे दोनों प्रतिष्ठित जैन-भक्त मथुरा तीर्थकी यात्रा करने गये थे। साहू टोडर भटानिया (जिला कोल, वर्तमान अलीगढ़) के निवासी गर्ग गोत्रीय अग्रवाल जैन पासा साहूके पुत्र थे। वे अकबरी शासन के एक प्रतिष्ठित राजपुरुष होनेके साथ ही साथ धनाढ्य सेठ भी थे। उन्होंने प्रचुर धन लगाकर मथुरामंडलके भग्न जैन स्तूपों और मंदिरोंके जीर्णोद्धारका प्रशंसनीय कार्य किया था। वह धार्मिक कार्य सं० 1630 की ज्येष्ठ शुक्ल 12 बुधवारको पूर्ण हुआ था। उसी समय उन्होंने चतुर्विध संघको आमंत्रित कर मथुरामें एक जैन समारोहका भी आयोजन किया था। तीर्थ-पुनरुद्धारके साथ ही साथ उन्होंने मथुराके चौरासी क्षेत्र पर तपस्या कर निर्वाण प्राप्त करनेवाले कैवल्यज्ञानी जम्बूस्वामीके चरित्र ग्रंथोंकी रचनाका भी प्रबन्ध किया था। फलतः उनकी प्रेरणासे संस्कृत और व्रजभाषा हिन्दीमें जम्बू-स्वामी चरित्र उस कालमें लिये गये थे। संस्कृत 'जम्बूस्वामी चरित्र' का निर्माण उस समयके विख्यात जैन विद्वान् पांडे राजमल्लने सं० 1632 की चैत्र कृ० 8 को और व्रजभाषा छन्दोबद्ध ग्रंथकी रचना पांडे जिनदासने सं० 1642 में की थी। बीकानेरके राज्यमंत्री कर्मचन्द्रने भी मथुरा तीर्थकी यात्रा कर यहाँके कुछ चैत्योंका जीर्णोद्धार कराया था। उसका उल्लेख 'कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तन' काव्यमें हुआ है।

पं० बनारसीदासकी महत्त्वपूर्ण देन—पं० बनारसीदास जौनपुर निवासी श्रीमाली जैन थे। वे मुगल सम्राट् जहाँगीरके शासनकालमें आगरा आये थे, और फिर उसी नगरके स्थायी निवासी हो गये थे। वे गृहस्थ होते हुए भी जैन दर्शन और अध्यात्मके अच्छे ज्ञाता, सुप्रसिद्ध साहित्यकार और क्रांतिकारी विद्वान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थे। उन्होंने जैनधर्मके अन्तर्गत एक आध्यात्मिक पंथकी स्थापना की, और अनेक ग्रंथोंकी रचना की थी। उनके पंथको पहिले 'अध्यात्मी पंथ' अथवा 'बनारसी मत' कहा जाता था, बादमें वह 'तेरह पंथ' के नामसे प्रसिद्ध हुआ था। उस सुधारवादी मतके कारण उस कालके दिगम्बर सम्प्रदायी चैत्यवासी भट्टारकोंकी प्रतिष्ठामें पर्याप्त कमी हुई थी।

पं० बनारसीदास हिन्दीके जैन ग्रंथकारोंमें सर्वोपरि माने जाते हैं। उनकी ख्याति उनकी धार्मिक विद्वत्तासे भी अधिक उनके ग्रन्थोंके कारण है। उनकी रचनाओंमें 'नाटक समयसार' और 'अर्थ कथानक' अधिक प्रसिद्ध हैं। 'नाटक समयसार' अध्यात्म और वेदान्तकी एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसका प्रचार श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें है। 'अर्ध कथानक' उनका आत्म-चरित्र है, जो उनके जीवनके प्रथम अर्ध भागसे संबंधित है। यह भी अपने विषयकी महत्त्वपूर्ण रचना है। उनकी दो अन्य रचनाएँ 'बनारसी नाम माला' और 'बनारसी विलास' हैं। ये सब ग्रंथ पद्यात्मक हैं। इनके अतिरिक्त उनकी एक गद्य रचना 'परमार्थ वचनिका' भी है। यह जैन साहित्यकी आरंभिक हिन्दी गद्य रचनाओंमेंसे है, अतः इसका भी अपना महत्त्व है।

औरंगजेबी शासनका दुष्परिणाम—मुगल सम्राट् अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँके शासन-कालमें जैनधर्मकी जितनी उन्नति हुई थी, औरंगजेबके शासनमें उससे अधिक अवनति हो गयी थी। उस कालमें व्रजमंडलके गैर मुसलिम धर्म-सम्प्रदायोंके सभी देव-स्थान नष्ट कर दिये गये थे। उक्त धर्म-सम्प्रदायोंके अधिकांश आचार्य, संत, महात्मा, विद्वान् और गुणी-जन व्रजमंडल छोड़कर हिन्दू राज्योंमें आकर बस गये थे। उस कालमें जैनधर्मकी स्थिति भी अत्यन्त शिथिल और प्रभावशून्य हो गयी थी। मथुराके प्रसिद्ध जैन-केन्द्र कंकाली टीला और चौरासीमेंसे कंकाली टीला तो पहिले ही वीरान-सा था, फिर चौरासीका सिद्ध क्षेत्र भी महत्त्वशून्य हो गया। बटेश्वर और आगरा केन्द्रोंकी भी तब प्रतिष्ठा भंग हो गयी थी।

आधुनिककालकी स्थिति—औरंगजेबी शासनकालके बादसे अंग्रेजी राज्यकी स्थापना तक समस्त व्रजमंडलमें जैनधर्मकी स्थिति बिगड़ी हुई रही थी। अंग्रेजी शासनकालमें मथुराके सेठों द्वारा जैनधर्मको बड़ा संरक्षण मिला था। इस घरानेके प्रतिष्ठाता सेठ मनीराम दिगम्बर जैन श्रावक थे। वे पहिले ग्वालियर राज्यके दानाधिकारी श्रीगोकुलदास पारिखके एक साधारण मुनीम थे। जब पारिखजी अपने साथ करोड़ोंकी धर्मादा सम्पत्ति लेकर उससे व्रजमें मंदिरादिका निर्माण कराने सं० 1870 में मथुरा गये थे, तब मनीराम मुनीम भी उनके साथ थे। पारिखजी अपनी मृत्युसे पहिले मनीरामजीके ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीचन्दको अपना उत्तराधिकारी बना गये थे। उनके बाद मनीराम लक्ष्मीचन्द पारिखजीकी विपुल सम्पत्तिके स्वामी हुए। उन्होंने व्यापार द्वारा उस सम्पत्तिको खूब बढ़ाया और विविध धार्मिक कार्योंमें उसका सदुपयोग किया। उन्होंने मथुराके 'चौरासी' सिद्ध क्षेत्रका जीर्णोद्धार कर वहाँ जैन मन्दिरका निर्माण कराया था। उसमें उन्होंने अष्टम तीर्थंकर भगवान् चन्द्रप्रभकी मूर्ति प्रतिष्ठित कर दिगम्बर विधिके अनुसार उनकी पूजाकी यथोचित व्यवस्था की थी। बादमें सेठ लक्ष्मीचन्दके पुत्र रघुनाथदासने वहाँ द्वितीय तीर्थंकर भगवान् अजितनाथकी संगमरमर प्रतिमाको प्रतिष्ठित किया था। मथुरामंडलके आधुनिक जैन देवालयोंमें यह मन्दिर सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ पर कार्तिक कृ० 2 से कृ० 8 तक प्रति वर्ष एक बड़ा उत्सव होता है, जिसमें रथयात्राका भी आयोजन किया जाता है।

वर्तमान स्थिति—इस समय मथुरामें जैनधर्मका प्रसिद्ध केन्द्र चौरासी स्थित जम्बूस्वामीका सिद्ध क्षेत्र ही है। यहाँ पर 'अखिल भारतीय दिगम्बर जैन-संघ' का केन्द्रीय कार्यालय है। साप्ताहिक-पत्र 'जैन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदेश' इसी स्थानसे प्रकाशित होता है। यहाँके 'ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम' में जैनधर्म और संस्कृत भाषाके साथ ही साथ वर्तमान प्रणालीकी शिक्षा दी जाती है। इस स्थानके 'सरस्वती भवन' में जैनधर्मके ग्रन्थोंका अच्छा संग्रह है।

व्रजमंडलमें जैनधर्मका सबसे बड़ा केन्द्र आगरा है। यहाँ पर मध्यकालसे ही जैन धर्मावलम्बियोंकी प्रचुर संख्या रही है। जैन-ग्रन्थकार तो अधिकतर आगराके ही हुए हैं। इस समय वहाँ जैनधर्मकी अनेक संस्थायें हैं, जो उपयोगी कार्य कर रही हैं। वहाँका जैन कालेज ग्रन्थभंडार भी प्रसिद्ध है।

मथुराके कंकाली टीलाका जैनकेन्द्र, जो 'देव निर्मित स्तूप' तथा अन्य स्तूपों और मन्दिर-देवालयोंके कारण विगतकालमें इतना प्रसिद्ध रहा था, इस समय वीरान पड़ा हुआ है। आश्चर्यकी बात यह है, जिस कालमें वह नष्ट हुआ, उसके बादसे किसीने उसका पुनरुद्धार करानेकी ओर ध्यान नहीं दिया। मथुराके सेठोंने भी उसके लिये कुछ नहीं किया, जबकि उन्होंने 'चौरासी' के सिद्ध स्थलका पुनरुद्धार कराया था। वास्तविक बात यह है कि कई शताब्दियों तक उपेक्षित और जड़ पड़े रहनेके कारण कंकाली टीलाकी गौरव-गाथाको लोग भूल गये थे। मथुराके सेठोंके उत्कर्ष-कालमें भी यही स्थिति थी। यदि उस समय उन्हें इस स्थलकी महत्ताका बोध होता, तो वे अपने विपुल साधनोंसे वहाँ बहुत कुछ कर सकते थे।

अबकी बार मथुरामें श्रीमहावीर जयन्तीका जो समारोह हुआ था, उसकी अध्यक्षता करनेके लिए मुझे आमंत्रित किया गया यद्यपि मैं जैन धर्मावलम्बी नहीं हूँ। मैंने उस अवसरका सदुपयोग कंकालीकी गौरव-गाथा सुनानेमें किया। उपस्थित जनसमुदायने मेरी बात बड़े कौतूहलपूर्वक सुनी। उन्हें इस बातका विश्वास नहीं हो रहा था कि मथुरामें किसी समय इतने महत्त्वका स्थल था। उत्सवकी समाप्तिके पश्चात् अनेक व्यक्तियोंने मुझसे पूछताछ की। जब मेरे बतलाये हुए ऐतिहासिक प्रमाणोंसे उन्हें विश्वास हो गया, तब वे उक्त स्थलका पुनरुद्धार करानेको व्यग्र होने लगे। उसी कालमें मुनि विद्यानन्दजी मथुरा पधारे थे। उनके समय इस चर्चाने और जोर पकड़ा। अब ऐसी स्थिति बन गई है कि निकट भविष्यमें इस पुरातन स्थलका पुनरुद्धार हो सकेगा।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org